अध्याय -- ५

-०-

सन्तों द्वारा प्रतिपादित भक्ति में ब्रह्म

अध्याय --५

सन्तों द्वारा प्रतिपादित भक्ति में ब्रह्म

ब्रह्म का स्वरूप

सन्त कवियों के अनुसार ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान समष्टिपरक न होकर व्यष्टिपरक साधना पर आधारित है । यह ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति को अपनी साधना तथा आत्म-चिन्तन से प्राप्त हो सकता है । सन्त कबीर ने स्वयं कहा है --' करत विचार मन ही मन उपजी, ना कहीं गया न आया[१] ।' तथा -- चेतत चेतत निकसिओ नीरु । सो जलु निरमलु कथत कबीरु[२] ।।'

कबीर को अपने मन ही मन स्वयं विचार करते-करते सत्य का प्रकाश हो उठा - कहीं आने-जाने की आवश्यकता नहीं पड़ी । चिन्तन करते-करते उस निर्मल जल की प्राप्ति हो गई । इसे कबीर 'राम-जल' भी कहते हैं, जिससे उनकी जिज्ञासा रूपी प्यास बुझती है । उनका यह ब्रह्म जैसा है उसे सही रूप में कोई जान नहीं पाता । कबीर ने स्वयं कहा है --'जस तू तस तोहि कोई न जान । लोग कहैं सब आनहिं आन[३] ।' वे इसे स्वयं अकथनीय

१- कबीर ग्रन्थावली--पद २३, पृ०६६

२-'आदि ग्रन्थ' राग गउड़ी, पद २४

३- कबीर ग्रन्थावली- पद ४७

समझते हैं और कहते हैं वह जैसा है वैसा ही है । -- जस कथिये तस होत नहीं, जस है तैसा सोइ[1] ।'

तात्पर्य यह कि कबीर का ब्रह्म एक है, निर्गुण है, सर्वव्यापी है, मन, बुद्धि और वाणी से परे है, इंद्रियातीत है, सृष्टिकर्ता है, घट में ही है, तथा शब्द रूप और शून्य रूप है ।

ब्रह्म एक है (एकेश्वरवाद)

सन्त कवियों ने युगानुकूल हिन्दू और मुसलमानों दोनों को एकेश्वरवाद का उपदेश दिया । डा० बड़थ्वाल के मत से सन्त कवियों का ब्रह्म एकेश्वरवादी विचार-धारा से पुष्ट और अद्वैतवाद के अधिक निकट है[2] । कबीर ने हिन्दुओं तथा मुसलमानों को सम्बोधित करते हुए कहा कि -- तुम्हें किसने भरमा दिया । दो भगवान कहाँ से आए ? अल्लाह राम, करीम-केशव, हरि-हजरत, वस्तुत: दोनों एक हैं । एक हा सोने से बने हुए विभिन्न नाम-रूप-धारी गहने हैं, उनमें किसी प्रकार का द्वैत भावना लाना व्यर्थ है । उनमें कहने सुनने भर के लिए पार्थक्य भावना है, नमाज और पूजा की पृथक् पृथक् उपासना पद्धतियां हैं, मूलत: वे दोनों एक और अद्वैत हैं[3] ।' सन्त कवियों ने हिन्दू और मुसलमान दोनों के इष्टदेव को बार बार एक हा सिद्ध करने का प्रयत्न किया है --

'हमारे राम रहीम करीमा केसो, अलह राम सति सोई ।
बिसमिल मेटि बिसम्भर एकै, और न दूजा कोई ।।
तुरक मसीति देहुरे हिन्दू , दहूठां राम खुदाई ।
हिन्दू तुरुक का करता एकै, ता गति लखा न जाई ।।'[4]

१-कबीर ग्रन्थावली--रमैणी ३, पृ०२३०

२- हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ०१४७

३- कबीर ग्रन्थावली-भाग४, पृ०७५

४- ,, पद ५८ ।

कबीर इस रहस्य से परिचित थे कि परम सत्य एक है । यदि उसे अनेक नामों से अभिहित किया जाय तो वह अनेक नहीं हो सकता, क्योंकि -- अपरम्पार का नाऊं अनन्त[१] । स्वयं कबीर ने ही ब्रह्म के लिए अनेक नामों का प्रयोग किया है, किन्तु वह ब्रह्म एक ही है --

अलह अलख निरंजन देव, किहि विधि करौं तुम्हारी सेव ।।
विश्न सोई जाकौ विस्तार, सोई कृस्न जिनि कियौ संसार ।।
गोव्यंदते ब्रह्मंडहि गहै, सोई राम जे जुगि जुगि रहै ।।
अलह सोई जिनि उमति उपाई, दस दर खौलै सोई खुदाई ।।
लख चौरासी रब परवरै, सोई करीम जे रती करै ।।
गोरख सोई ग्यांन गमि गहै, महादेव सोई मन को लहै ।।
सिध सोई जो साधै इती, नाथ सोई जो त्रिभुवन जती ।।
सिध साधु पैगम्बर हूवा, जपै सु एक भेष है जूवा ।।
अपरंपार का नाउ अनंत, कहै कबीर सोई भगवन्त ।।

(कबीर ग्रन्थावली, पृ०१६६)

तात्पर्य यह कि कबीर ने अल्लाह, निरंजन, विष्णु, कृष्ण, गोविन्द, राम, खुदा, रब, करीम, गोरख, महादेव, सिद्ध, पैगम्बर, नाथ आदि नामों का प्रयोग ब्रह्म के लिए ही किया है । इतना तक ही नहीं, उन्होंने यह भी कहा है कि ब्रह्म के असंख्य नाम हैं, उन सबसे भगवान् ही का बोध होता है[२] ।

अत: स्पष्ट है कि कबीर एकेश्वरवाद के समर्थक थे तथा उनकी दृष्टि में बहुदेववाद का समर्थक उस गणिका-पुत्र के समान है, जिसे इस बात का ज्ञान ही नहीं रहता कि उसका वास्तविक पिता कौन है[३] ।

१-कबीर ग्रन्थावली, पृ०१६६, पद ३२७
२-कबीर दर्शन, पृ०१६० -- डा० रामजी लाल सहायक
३- राम पियारा छांड़िकर करै आन का जाप, बेस्वा केरा पुत ज्यूं कहै कौन सूं बाप।
कबीर ग्रन्थावली, पृ०६ साखी २२

निर्गुण ब्रह्म

सन्त कवियों ने निर्गुण ब्रह्म की उपासना की है । सन्त कबीर ने बार-बार निर्गुण राम को जपने का उपदेश दिया है । 'निर्गुण राम का जाप करो, उस अज्ञेय की गति लखी नहीं जा सकती[1] ।' वह आँखों से देखा नहीं जा सकता, वह अलख है[2] । वह गुण से परे है, गुन रहित है, तथा उसका नाम भी नहीं रखा जा सकता[3] । वह निरभय है तथा निराकार है[4] ।

बिनु मुख खाइ चरन बिन चालै, बिनु जिभ्या गुण गावै ।
आछै रहै ठौर नहीं छाड़ै, दह दिसिही फिरि आवै ।।
बिन हीं ताला ताल बजावै, बिन मंदल षट ताला ।
बिन ही सबद अनाहद बाजै, जहां निरतत है नंदलाला ।।
'बिनां चोलनें बिना कंचुकी, बिनहीं संग संग होई ।
दास कबीर औसर भल देख्या, जाणैगा जन कोई ।।'[5]

कबीर का निर्गुण निराकार ब्रह्म बिना मुख के ही खा लेता है । बिना पैरों के ही चल लेता है । वह ऐसा अनुपम तत्व है जो रूप-अरूप से परे है तथा पुष्प की सुगन्ध से भी सूक्ष्म है --

'जाके मुंह माथा नहीं, नाहीं रूप अरूप ।
पुहुप बास थै पातरा, ऐसा तत अनूप ।।'[6]

कबीर ने उसके लिए कहा है कि न वह दूर है न निकट है, न शीत है, न ऊष्ण है, न शब्द है न स्वाद है-- यथा--

---

१- निर्गुण राम जपहु रे भाई । अविगति की गति लखी न जाई ।
--कबीर ग्रन्थावली,पृ०१०४
२- अलख निरंजन लखै न कोई । --कबीर ग्रन्थावली,पृ०२३०
३- गुन विहून का पेखिये, काकर धरिये नाव । --कबीर ग्रन्थावली,पृ०२३६
४- निरभय निराकार है सोई '-- कबीर ग्रन्थावली,पृ०२३०
५- कबीर ग्रन्थावली,पृ०१४०
६- ,, पीव पिछाणन कौ अंग ४ ।

'नहीं सौ दूर नहीं सौ नियरा, नहीं सौ तात नहीं सौ सियरा ।।
पुरिष न नारि करै नहीं कीरा, घांम न ढांम न व्यापै पीरा ।।
नदी न नाव धरनि नहिं धीरा, नहीं सौ कांच नहीं सौ हीरा।।'[1]

कबीर की भांति ही अन्य सन्तों ने भी ब्रह्म के विषय में कहा है कि वह ऐसा नहीं है, ऐसा नहीं है --

'चंद सूर नहिं, राति-दिवस नहिं धरनि अकास न भाई ।
करम अकरम नहिं, शुभ अशुभ नहिं, का कहिं देउं बड़ाई ।।
शीत वायु उष्ण सतत काम कुटिल नहि होई ।
जोग न भोग रोग नहिं ताके कहा नाम सत सोई ।।
निरंजन, निराकार निरलेपहिं निरबिकार निर्बासी ।
गुन निर्गुन कहियत नहिं जाके, कहो तौ बात सयानी ।।'[2]

सन्त कवियों के विचार से यह पर ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन 'अस्ति' और 'नास्ति' से परे है ।

'नाहीं नाहीं कर कहै, 'है है' कहै बखानि ।
'नाहीं' 'है' के मध्य है, सौ अनुभव करि जानि[3] ।।'

इसीलिए कबीर उसे स्थूल और सूक्ष्म से परे बतलाते हैं ।

भारी कहौं तब बहु डरौं, हलका कहूं त झूठ ।
का मैं जाणूं राम कूं, नैनूं कबहू न दीठ ।।
दीठा है तो कस कहूं, कह्यां न को पतिआइ ।
हरि जैसा है तैसा रहौ, तूं हरषि हरषि गुन गाइ[4] ।।'

1- कबीर ग्रन्थावली, पृ०२४३
2- सं०- रामानन्द शास्त्री, हरिद्वार-- संत रविदास और उनका काव्य, सन१९४२
3- ज्ञान समुद्र--१
4- कबीर ग्रन्थावली -- जणा को अंग १,२ ।

अन्त में कबीर ' ब्रह्म का क्या स्वरूप है, ब्रह्म कैसा है' इस विषय में उसे अनिर्वचनीय ही मानते हैं ।

''ऐसा लो नहिं ऐसा लो, केहि विधि कहौं गंभीरा लो ।
दृष्टि न मुष्टि परगट अगोचर, बातन कहा न जाई लो ।।'[1]

कबीर ने उस ब्रह्म को वेद विवर्जित, स्थूल-सूक्ष्म-विवर्जित, भेष-विहीन, रूप विहीन और त्रैलोक्य विवर्जित बताया है[2]।

अतः कबीर ने निर्गुण ब्रह्म का अनेक प्रकार से वर्णन कर अन्त में उसे नेति-नेति कहा है । उसका कोई आदि अंत नहीं है, आर-पार नहीं है तथा वह वर्णनातीत है ।

सर्वव्यापी ब्रह्म

कबीर का ब्रह्म 'अविगत', 'अलख' और 'अभेद' है[3]। वह निराकार ब्रह्म समस्त पिंड और ब्रह्माण्ड में परिव्याप्त है[4]। वह सर्वत्र समाया हुआ है, जिधर दृष्टि पड़ती है उधर वही दृष्टिगत होता है । कोई भी ऐसा स्थान नहीं है जो उसकी सत्ता से परे हो । वह पुष्प में महक, काष्ठ में छिपी अग्नि, दूध में घी तथा मेंहदी में लाली की भांति अदृश्य रूप से सब में समाया

१- डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी -- कबीर (कबीर वाणी) पद ६

२- वेद विवर्जित, भेद विवर्जित, विवर्जित पाप रु पुन्यं ।
ग्यान विवर्जित ध्यान विवर्जित, विवर्जित अस्थूल सुन्यं ।
भेष विवर्जित भीख विवर्जित, विवर्जित ड्यंभ रूपं ।
कहै कबीर तिहुं लोक विवर्जित, ऐसा तत अनूप ।।
कबीर ग्रन्थावली, पृ० १६३

३- कबीर ग्रन्थावली, पृ० १८६

४- ,, ,, पृ० ८१

हुआ है[१]। वह ब्रह्म सम्पूर्ण जगत में समाया हुआ है तथा सम्पूर्ण जगत ब्रह्म में समाया हुआ है। कबीर पंथ की छत्तीसगढ़ी शाखा के अनुसार--

'सब ही घर है गांव में, गांव कौन घर मांहि।
ऐसे सब जग ब्रह्म में, न्यारो कितहुं नाहिं ।।'[२]

अर्थात् सभी घर तो गांव में स्थित होते हैं, और यदि कहा जाय कि गांव किस घर में स्थित है, तो इस प्रश्न का क्या उत्तर दिया जा सकता है। ठीक उसी प्रकार सारी सृष्टि ही ब्रह्म में स्थित है। ऐसा कोई स्थान नहीं जहां उसका निवास न हो।

'सबै ब्रह्म कछु न्यारा नाहीं, जो देखो सो ब्रह्म समाहीं'[३]।

स्थावर जंगम रूप संसार, पृथ्वी, पाताल आकाश, पवन, अग्नि, मेघ, देव, दानव, तारागण इत्यादि सभी ब्रह्म मय हैं[४]।

कबीर ने स्पष्ट कहा है कि मैंने एक-एक करके सब कुछ जान लिया। उसी एक ब्रह्म की सत्ता सम्पूर्ण घट-घट में व्याप्त है।

'एकै पवन एक ही पानी, एक जोति संसारा।
एकही खाक घड़े सब भांडे, एक ही सिरजन हारा।।
जैसे बाढ़ी काष्ठ ही काटै, अगिनि न काटै कोई।
सब घटि अंतरि तुंही व्यापक, धरै सरूपै सोई ।।'[५]

१- सन्त कबीर--राग गउड़ी, ५२, ६७, ७५।

२- कबीर पंथी शब्दावली- पृ०५४५(श्री लक्ष्मी वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस बम्बई संवत् १९८८)

३- मूल निर्णय सार- श्री पुरण साहब, बुरहानपुर, सं०२०१३

४- ब्रह्म निरूपण, कबीर आश्रम, जाम नगर, सौराष्ट्र सं०२०११, टीकाकार-- प्रकाशमणि नाम साहब।

५- संपादक -परशुराम चतुर्वेदी -- संत काव्य, पृ० १६०

मन, बुद्धि और वाणी से परे ब्रह्म

कबीर ने ब्रह्म की सत्ता को स्वीकार करते हुए उसे मन, वाणी और बुद्धि से परे बतलाया है। 'ब्रह्म निरूपणम्' नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि वह वाणी से नहीं जाना जा सकता, वह ज्ञान से भी अगम्य है, तथा मन भी वहाँ तक नहीं पहुंच पाता[1]। फतुहामठ के आचार्य गुरुदयाल साहब ने भी इसी रूप में कहा है--

'मन बुद्धि वाणी श्रुति कहै जहाँ न पहुँचे तान।
फिरि ताको जानन चहै ते परम प्रवीन ॥'[2]

कबीर ने कहा है कि ब्रह्म को वाणी द्वारा नहीं व्यक्त किया जा सकता, क्योंकि --

'बोलनाँ का कहिये रे भाई, बोलत बोलत तत नसाई[3]।'

इसके विषय में कुछ बतलाना तत्व की अनभिज्ञता ही है। कबीर उसे गूँगे का गुण कहते हैं।

'कहै कबीर घर ही मनमाँनाँ, गूँगे का गुड़ गूँगे जाँनाँ।'[4]

जिस प्रकार गूंगा गुण की मिठाई व्यक्त नहीं कर पाता, उसी प्रकार ब्रह्म भी वाणी से व्यक्त नहीं किया जा सकता। अतः वह मन, वाणी तथा बुद्धि से परे-- इन्द्रियातीत है।

१-वचसा कथनीयं न ज्ञानेनाप्यगम्यं तथा। मनः पंगुर्भवेत्तस्य तस्य तद्गुगमं सुलभ ॥
टीकाकार श्री विचारदास जी-- ब्रह्म निरूपणम्, पृ०६८, श्लोक५४,
श्री कबीर आश्रम, जामनगर, सौराष्ट्र, सं०२०१२

२- गुरुदयाल साहब-- श्री कबीर परिचय, साखी २६८, बुरहानपुर, सं०२०११

३- कबीर ग्रन्थावली, पृ०१०६

४- ,, पृ०१०६

सृष्टिकर्ता

कबीर ने ब्रह्म को 'सिरजनहार' कहा है । ब्रह्म ही सृष्टि का कार्य और कारण रूप है । वह सृष्टिकर्ता है तथा सृष्टि के कण-कण में भी व्याप्त है । जैसे बीज के अभाव में वृक्ष की तथा वृक्ष के अभाव में बीज की स्थिति असम्भव है, उसी प्रकार ब्रह्म ही बीज और वृक्ष रूप में कार्य और कारण बनता है । सृष्टि की रचना वह कारण रूप में करता है, तथा कार्य रूप में सृष्टि के कण-कण में व्याप्त रहता है ।

'बीज बिना नहिं वृक्ष रहाई, वृक्ष के बिना बीज कहां पाई ।
तैसा जग में ब्रह्म विराजै, ब्रह्म बिना जगत कहां छाजै ।।
बीज वृक्ष को जैसा लेखा, तैसा ब्रह्म अरु जगत विवेका ।
बीज वृक्ष पृथिवी में लहिये, ब्रह्म जगत आतम में कहिये ।।'[१]

'अम्बु-सागर' में ब्रह्म को सृष्टि का नियामक माना गया है[२] । 'कबीर ग्रन्थावली' में भी उसे सृष्टि कर्ता तथा सिरजनहार माना गया है[३] । कबीर ने कहा है कि कुम्हार की भांति उसने स्वयं सृष्टि की रचना की --

'आपन करता भये कुलाला । बहु विधि सृष्टि रचो दर हाला ।'

घट में ही ब्रह्म

कबीर ने उस ब्रह्म को अपने घट के ही भीतर स्थित बतलाया है-

तेरा साहब है घटमांही, बाहर नैना क्यों खोले ।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, साहिब मिल गए तिल ओले[४] ।।'

१- श्री पूरण साहब -- निर्णय सार, पृ०२७
२- अम्बुसागर, पृ०४, बम्बई, सं०२००६
३- कबीर ग्रन्थावली, पृ०१०५
४- डा० रामकुमार वर्मा-- कबीर का रहस्यवाद, पृ०१६६

यद्यपि वह परमतत्व अपने घट में ही है, फिर भी मृग की भांति अज्ञान में पड़कर, मोह-माया के वशीभूत होकर मूढ़जन उसे बाहर ढूढ़ते फिरते हैं--

'ज्यूं नैनूं में पूतली, त्यूं खालिक घट मांहि ।
मूरिख लोग न जांणहीं बाहरि ढूंढ़ण जांहिं ।।'[1]

'आत्मबोध' में इसे भी इसी रूप में कहा गया है--

'नाभि कस्तूरिका मृग बारे फिरै, उलटि करि आपौ नाहिं जावे ।
ममता ममता यौनि पूरी करै, अंध यौं आपुनी वस्तु खावै ।।
नाभि निज नाम सौ ठाम पावै नहीं, जगत सर्व तीर्थ गर्म भुला ।
कहै कबीर हरि पंथ को नाल है, अंध भव सिन्धु में फिरत फूला ।।'[2]

शब्द रूप ब्रह्म

प्राचीन काल से ही 'शब्द - ब्रह्म' का विशेष महत्व चला आ रहा है । उपनिषदों में अक्षर को ही परब्रह्म माना गया है[3] । मध्ययुग में आकर संत कबीर ने भी 'अनहद सबद होत झनकार'[4] तथा 'सबद अती अनाहद राता, इहि विधि तृष्णां षांडी'[5] कहकर 'शब्द' का महत्व-प्रतिपादन किया है। 'योगशास्त्र' से प्राप्त ईश्वर वाचक शब्द 'ऊंकार' अथवा 'प्रणव' को भी कबीरदास ने स्वीकार किया है तथा उसे विश्व का मूल तत्व कहा है--

'ऊंकारे जग ऊपजै'

१- कबीर ग्रन्थावली, पृ०८२
२- आत्म बोध, पृ०१०(बम्बई, सं०२००६)
३- कठोपनिषद् १।२।१६
४- कबीर ग्रन्थावली, पृ०२६६
५- ,, पृ०९१

तथा--'ऊंकार आदि है मूला, राजा परजा एकहि सूला[1]।'
इतना ही नहीं, शब्द ब्रह्म की साधना के लिए कबीर ने बार-बार प्रयत्न किया है--

'साधो शब्द साधना कीजे ।
जेही शब्द ते प्रगट भये सब, सोई शब्द गहि लीजे ।।
सबद गुरु सब्द सुन सिव भये, शब्द सो बिरला बूझै ।
सोई शिष्य सोई गुरु महातम, जेहि अंतरगति बूझै ।।
शब्दै वेद पुरान कहत हैं, शब्दै सब ठहरावैं ।
शब्दै सुर-मुनि संत कहत हैं, शब्द-भेद नहीं पावैं ।।
शब्दै सुन सुन भेष धरत है, शब्दै कहै अनुरागी ।
षट् दर्शन सब शब्द कहत है, शब्द कहै बैरागी ।।
शब्दै काया जग उतपानी, शब्दै केरि पसारा ।
कहै कबीर जंह शब्द होत है, भवन भेद है न्यारा ।।'[2]

शून्य रूप ब्रह्म

सिद्धों और नाथों की परम्परा के अनुसार ही शून्य रूप का प्रयोग सन्त साहित्य में भी होने लगा । गोरख ने कहा था--

'बसती न सुन्यं सुन्यं न बसती अगम अगोचर ऐसा ।
गगन सिषर महि बालक बोलै ताका नांउ धरहुगे कैसा[3] ।।'

अर्थात् यह 'शून्य' अद्वैत तत्व है । इसी शून्य को कबीर ने ब्रह्म रूप में स्वीकार किया है-

'अबरन बरन घाम नहिं छाया । अबरन पाइये गुरु की माया[4] ।
टारी न टरै आवै न जाइ । सुन्नि सहज महि रह्यौ समाइ ।।'

१- कबीर ग्रन्थावली,पृ०२४०
२- डा०हजारीप्रसाद द्विवेदी--'कबीर',परिशिष्ट-कबीर वाणी,पद५७,पृ०२६८
३- गोरखबानी,पृ०१
४- कबीर ग्रन्थावली,पृ०२६६

इसके अतिरिक्त सन्तों ने इस शून्य शब्द को ब्रह्मरन्ध्र,सुषुम्ना तथा परमलोक के रूप में प्रयुक्त किया है ।

ब्रह्मरन्ध्र के रूप में

कबीर -- 'उलटे पवन चक्र षटबेधा, मेरु दण्ड सरपूरा ।
गगन गरजि मन सुन्नि समाना, बाजे अनहद तूरा[1] ।।'

नानक -- सुन्नि सरोवर सुरति समानी । नानक चूकी आवन जानी[2] ।।

दादू -- सुन्न सरोवर मन भंवर, तहां कंवल करतार ।
दादू परिमल पीजिए, सनमुख सिरजनहार ।।[3]

सुषुम्ना के रूप में--ब्रह्म--

'गंग जमुन उर अंतरै, सहज सुन्नि ल्यो घाट ।
तहां कबीर मठ रच्या,मुनि जन जोवैं बाट ।।'[4]

परम लोक के रूप में - ब्रह्म

जो खोजहु सो उहवां नांही, सो तो आहि अमरपद मांही ।
कहहिं कबीर पद बूझै सोई, मुख हृदया जाके एकै होई ।।[5]

कबीर का 'शून्यवाद' ब्रह्मवाद से प्रभावित है,जिसके कारण उन्होंने शून्य रूप-ब्रह्म का वर्णन किया ।

कबीर की भांति ही नानक,दादू,सुन्दरदास तथा अन्य सन्त कवियों ने भी ब्रह्म को निर्गुण,निराकार, सर्वव्यापी,सृष्टिकर्ता,मनु,बुद्धि तथा

१-कबीर ग्रन्थावली,पृ०६०
२- नानक- प्राण०,पृ०१३०
३- दादू दयाल की बानी ६,पृ०५१-५२
४- कबीर ग्रन्थावली ,पृ०१८
५- ,, बीजक,शब्द ७६

वाणी से परे शब्द तथा शून्य रूप में स्वीकार किया है ।

नानक

गुरु नानक ने ब्रह्म को ही सब कुछ माना है । वह एक है, सत्य स्वरूप है, जगत का स्रष्टा है, निर्गुण निराकार है, काल की पहुंच से परे है, अजन्मा है, तथा स्वयंभू है । ब्रह्म ही सब कुछ है । वही रसिया है, वही रस है तथा वही उसका भोगने वाला है --

'आपे रसीआ आपि रसु, आपे रासण हारु ।'[१]

तथा--

आपे माही मछुली, आपे पाणी जालु ।
आपे जाल मणकड़ा, आपे बंदरि लालु ।।'[२]

अर्थात् वही मछली है, वही मछली पकड़ने वाला है, वही पानी है, वही जाल है और वही चारा भी है । इतना ही नहीं, वही रत्न है, वही जौहरी है, और वही उस रत्न का मूल्य है तथा--

'आपे हीरा निरमला, आपे रंगु मजीठ ।
आपे मोती ऊजलो, आपे भगत बसीठ ।
गुरुकै सबदि सलाहणा, घटि घटि डीठु अडीठु ।।'[३]

अर्थात् वही निर्मल हीरा है, वही मजीठ का रंग है, वही उज्ज्वल मोती है । गुरु का उपदेश पाकर मैंने उस अदृश्य को घट-घट में देखा है । कोई भी स्थान

१- परशुराम चतुर्वेदी -- संत काव्य, पृ०२४०
२- ,, -- ,, पृ०२४०
३- ,, -- ,, पृ०२४१

उसकी सत्ता से शून्य नहीं है । वह एक ही ब्रह्म सर्वत्र दिखलाई पड़ रहा है । उसकी ही ज्योति से सर्वत्र प्रकाश फैला हुआ है । वह सर्वव्यापी है ।

'घट-घट अंतरि ब्रह्मु लुकाइआ, घटि घटि ज्योति समाई ।।'

वह अलख है, अपार है, अगम है, अगोचर है, कालातीन तथा जाति बन्धन से मुक्त है --

'अलख अपार अगंम अगोचरि, ना तिसु कालु न चरमा[१] ।।'

जाति अजाति अजोनी संभउ, ना तिसु माउ न मरमा ।।'

तथा--

वह रूप विहीन है, वर्ण विहीन है । न उसके पिता है न माता है न पुत्र है न भाई है न स्त्री है । वह कुल रहित है, किन्तु उसी 'निरंजन' की ज्योति सर्वत्र फैली हुई है ।' वह कितना विराट है । इसीलिए नानकदेव ने उसकी विराट आरती का चित्र प्रस्तुत किया है --

'आकाश मण्डल थाल है, सूर्य और चन्द्रमा दो दीपक हैं, उसमें नक्षत्रों के मोती जड़े हुए हैं । मलयानिल तेरी धूप है और पवन तुझे चंवर डुलाता है । हे ज्योति स्वरूप समस्त कानन तेरे फूल हैं । हे जन्म-मरण से छुड़ाने वाले ! जहां अनहद नाद की तुरही बज रही है, यह तेरी आरती बड़ी विचित्र है।[२]'

दादू दयाल

'ना घरि रह्या न बनि गया, ना कुछ किया कलेश ।
दादू मन ही मन मिल्या, सतगुर के उपदेश ।।'

१- आचार्य परशुराम चतुर्वेदी-- संत काव्य,पृ०२५०

२- संत सुधासार,पृ०२३६

कबीर की भांति ही दादूदयाल को भी ब्रह्म की प्राप्ति के लिए कहीं आना-जाना नहीं पड़ा, कुछ कष्ट नहीं उठाना पड़ा, वरन् सतगुरु के उपदेश से मन ही मन स्वयं विचार करते -करते आत्म-चिन्तन से ही उसकी प्राप्ति हो गई । उस पीव को प्राप्त कर दादू का मन उसमें इस प्रकार समाया रहता है,जैसे पुष्प में सुगन्ध और दूध में घी । उस हरि रस के पान करने से कभी अरुचि नहीं होती,वरन् नित्य नूतन प्यास बढ़ती ही जाती है--

'प्राण हमारा पीवसौं, यौं लागा रहिये ।
पुहुपवास, घृत दूध मैं, अब कासौं कहिये ।।
दादू हरि रस पीवतां,कहूं अरुचि न होइ ।
पीवत प्यासा नित नवा, पीवणहारा सोइ ।। [१]

उनका ब्रह्म सर्वव्यापी है, अद्वितीय है। दादू ने उसे सर्वव्यापी शून्य,सहज,परमपद,निर्वाण आदि कई नामों से पुकारा है,किन्तु वह है एक ही । वह दूर नहीं है, बाहर भीतर सब जगह एक सा है तथा सर्वत्र समाया हुआ है । वह अन्तर्यामी है तथा रोम-रोम में रम रहा है --

'रोंम रोंम में रमि रह्या, सो जीवनि मेरा ।
जीव जीव न्यारा नहीं, सब संगि बसेरा ।।
सुंदर सो सहजैं रहै, घटि अंतरजामी ।
दादू सोई देखिहौं, सारां संगि स्वामी ।।' [२]

दादू एकमात्र उस पीव को ही देखते हैं, अन्य दूसरे को नहीं । वे कहते हैं कि तन नहीं है, मन नहीं है, माया नहीं है, जीव नहीं है,अर्थात् कुछ भी नहीं है । दसों दिशाओं में जो कुछ भी दिखलाई पड़ रहा है,वह एकमात्र

१-परशुराम चतुर्वेदी-- संत काव्य,पृ०२६३-२६४ ।
२- ,, ,, पृ० २८६

मेरा पीव है[१]। जिसका प्रकाश सर्वत्र फैला हुआ है।

'दह दिसि दीपक तेज कै, बिन बाती बिन तेल।
चहुं दिसि सूरज देखिये, दादू अद्भुद झल ।।'[२]

उसके विराट् स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए दादू दयाल कहते हैं--

'दादू सबै दिसा सौं सरिखा, सबै दिसा मुख बैन।
सबै दिसा श्रवनहु सुणै, सबै दिसा कर नैन ।।
सबै दिसा पग सीस हैं, सबै दिसा मन चैन ।
सबै दिसा सनमुख रहै, सबै दिसा अंग ऐन ।।'[३]

अन्त में दादूदयाल कहते हैं कि वह ऐसा अनुपम ब्रह्म तत्व है जो न तो अग्नि में जल सकता है, न जल में डूब सकता है, न मिट्टी में मिल सकता है, तथा न आकाश में लीन हो सकता है। वह एक रस होकर घट-घट में व्याप्त है[४]। अहो भगवन्! तेरा चरित्र अपरंपार है, जो सहज रूप में ज्ञातव्य नहीं है।

'अगम अगोचर अपार अपरंपरा, को यहु तेरा चरित न जाने।
ये सोभा तुमकौं सोहै सुन्दर, बलि बलि जांऊ दादू न जाने[५] ।।'

१- तन मन नाहीं मैं नहीं, नहिं माया नहिं जीव।
दादू एकै देखिये, दहदिसि मेरा पीव ।।
--परशुराम चतुर्वेदी-- सन्तकाव्य,पृ०२६६

२- दादूदयाल की बानी,भाग१,परचा को अंग ८७,८८

३- ,, पृ०२४ , साखी ४,२४,२४५

४- ,, पद २२८

५- ,, भाग २ पद ६३

सुन्दरदास

सुन्दरदास ब्रह्म का निरूपण करते हुए कहते हैं कि वह घट-घट में व्याप्त है । वह अपने घट में भी स्थित है, किन्तु दिखलाई नहीं पड़ता । यह उसकी बड़ी विचित्र दशा है । यदि किसी से कहता हूं कि वह एक ही ब्रह्म सब में समाया हुआ है तो लोग कहते हैं, वह कैसा है, आंखों से दिखलाइए । जब यह कहता हूं कि वह रूप रेख रहित है तो सब झूठा ही झूठा सिद्ध होता है । तथा जब कहता हूं कि नयनों के मध्य ही स्थित है तो भी सत्य नहीं । उसके विषय में क्या कहा जाय, कुछ कहते नहीं बनता और यदि कहने का प्रयास भी किया जाता है तो लज्जित होना पड़ता है[१] । सुन्दरदास कहते हैं कि उस ब्रह्म के विषय में जो कुछ भी कहता हूं, वह वैसा नहीं है । वह है सही में-- पर जैसे को तैसो है ।

'एक कहूं तो अनेक सो दीसत, एक अनेक नहीं कछु ऐसो ।
आदि कहूं तिहि अंतहूं आवत, आदि न अंत न मध्य सु कैसो ।
गौपि कहूं तो अगौपि कहा यह, गौपि अगौपि न ऊभो न बैसो ।
जोइ कहूं सोइ है नहिं सुन्दर, है तो सही परि जैसे को तैसो ।।'[२]

इसके अतिरिक्त सुन्दरदास जी नकारात्मक शैली में ब्रह्म के स्वरूप निर्धारण का प्रयत्न करते हैं । उनका ब्रह्म न तो कामी है, न जती है, न सूम है, न सती है, न राजा है, न रंक है, न तन है न मन है । वह न तो सोया है न जगा है,न पीछे है न आगे है न तो गृही है और न तो त्यागी ही है । न घर है न बन है । न स्थिर है न चलायमान है । न मौन रहता है न बोलता है, न स्वामी तथा न सेवक ही है । अर्थात् उसकी गति बड़ी निराली है । कोई

१- संत सुधासार,पृ०६३१
२- परशुराम चतुर्वेदी-- संत काव्य,पृ०३६१

कोई विरला ज्ञानी ही उसे जान सकता है[१]।

सुन्दरदास ने ब्रह्म को विश्वमय और विश्व को ब्रह्ममय कहा है।

'तूं ही जीव रूप तूं ही ब्रह्म है आकाशवत्

सुन्दर कहत मन तेरी सब धोर है ।।[२]

तथा--

'तो ही में जगत यह तू ही है जगत मांहि,

तो में अरु जगत में भिन्नता कहां रही ।।'

इतना ही नहीं, यहां तक कि --

'सुन्दर कहत एक एकई अखण्ड ब्रह्म,ताहीं का पलटि के जगत नाम धर्यो है' कहकर जगत् को ब्रह्म का पर्यायवाची मानते हैं।

इस प्रकार कबीर,नानक,दादू तथा सुन्दरदास की भांति ही इनके परवर्ती अन्य संत कवियों-- रैदास,गरीबदास,मलूकदास,चरनदास,जगजीवनदास, यारी साहब, दरियासाहब, गुलाल साहब, आदि ने भी ब्रह्म को निर्गुण ,निराकार, सर्वव्यापी तथा सर्वशक्तिमान् कहा है।

१- परशुराम चतुर्वेदी -- संत काव्य,पृ०३६४

२- ,, ,, पृ०३६३